आलोचना पाठ

दोहा:- बंदौ पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धि-करन के काज।।१।।

(सखीछन्द)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निवृति काज, तुम सरन लही जिनराज।।२।।

इक बे ते चउ इंद्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहीं करुणा भारी, निरदइ ह्वै घात विचारी।।३।।

समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं।।४।।

शत आठ जु इनि भेदनतै, अघ कीने परछेदन तै।
तिनकी कहूँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी।।५।।

विपरीत एकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने।।६।।

कुगुरनकी सेवा कीनी, केवल अदया करि भीनी।
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो।।७।।

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो।।८।।

सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवनको।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने।।९।।

फल पंच उदंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाहे।
नहिं अष्ट मूलगुण धारी, सेये कुविसन दुखकारी।।१०।।

दुइवीस अभख जिन गाये, सो भी निश दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, त्यों त्यों करि उदर भरायो।।११।।

अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये।।१२।।

परिहास अरति रति शोक, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।।१३।।
निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय वन धायो, नाना विध विष-फल खायो।।१४।।
कियऽ हार नीहार विहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई।।१५।।
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकल्प उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही हैं, मिथ्यामति छाय गई हैं।।१६।।
मरजादा तुम ढ़िग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन्न भिन्न अब कैसें कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पइये।।१७।।
हा हा ! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विरोधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी।।१८।।
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
पुनि विन गाल्यों जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो।।१९।।
हा हा ! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा।।२०।।
हा हा ! परमाद बसाई, विन देखे अग्नि जलाई।
तामध्य जीव जे आये, ते हूं परलोक सिधाये।।२१।।
बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाड़ू ले जागां बुहारी, चिंउटी आदिक जीव बिदारी।।२२।।
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया विन पाप उपाई।।२३।।
जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।।२४।।
अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गरियारैं धूप डराया।।२५।।

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरंभ हिंसा साजै।
किये अघ तिसनावश भारी, करुणा नहिं रंच विचारी।।२६।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वाणी तैं कहिय न जाई।।२७।।
ताको जु उदय अब आयो नाना विध मोहि सतायो।
फल भुँजत जिय दुःख पावै, वचतै कैसे करि गावै।।२८।।
तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही हैं, तिन तारन विरद सही हैं।।२९।।
जो गाँवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुःख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी।।३०।।
द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता-प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुःख मेटो अंतरजामी।।३१।।
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सब दोष-रहित करि स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी।।३२।।
इंद्रादिक पदवी नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज पद दीजै।।३३।।

दोहा

दोष रहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय।।
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
यही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द।।

पपोरा जी